National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(62): 74-78
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

अपूर्बा हलदर
पीएच०डी० शोधछात्र, संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय ,
समरहिल, शिमला-171005

डॉ० सपना चन्देल
सहायक आचार्य, संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
समरहिल, शिमला-171005

Correspondence:
अपूर्बा हलदर
पीएच०डी० शोधछात्र, संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय ,
समरहिल, शिमला-171005

चरकसंहिता में रक्तपित्त व्याधि : उपसर्ग सहित निदान एवं उपचार

अपूर्बा हलदर , डॉ० सपना चन्देल

सारांश

'आयुर्वेद' शास्त्र भारतीय चिकित्सा पद्धति का आधार है, जिसमें विविध रोगों के कारण और उपचार का वर्णन किया गया है। उन्हीं में से एक रक्तपित्त रोग है, जो आहार-विहार, खान-पानादि के कारण उत्पन्न होता हैं। इस रोग की शान्ति के लिये औषधिमात्रा, मधुर-कषायादि भोजन, बाहरी शरीर पर लेप, परिषेक और वमन इत्यादि द्वारा उपचार करना चाहिए। प्रस्तुत शोधपत्र में इस रोग की परिभाषा, उत्पत्ति, कारण, पूर्वरूप व उपचार आदि का वर्णन किया गया है। आयुर्वेद ग्रन्थ 'चरकसंहिता' में इस रोग की विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

शब्द संकेत

आयुर्वेद, रक्तपित्त व्याधि, हेतु, पूर्वरूप (लक्षण), उपसर्ग, साध्य-असाध्यता, चिकित्सा।

भूमिका

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में रोग मुक्ति के उपाय, विविध रोगों के कारण एवं उनके चिकित्सा का वर्णन मिलता है। अत: सर्वप्रथम आयुर्वेद किसे कहा जाता है। इस शब्द के विषय में जानना अति आवश्यक है। बृहत् हिन्दी शब्दकोश के अनुसार आयु के लिए हित (मङ्गलकारक) अहित (हानिकारक) पदार्थों का वर्णन और रोगों के कारण तथा चिकित्सा का वर्णन करने वाला शास्त्र ही 'आयुर्वेद' (आयु:+वेद) है।[1] बृहत हिन्दी पर्यायवाची शब्दकोश में आयु का अर्थ जीवनकाल, उम्र, जिन्दगी आदि है[2] और संस्कृत हिन्दीकोश में वेद का अर्थ ज्ञान है।[3] इस प्रकार संयुक्त रूप से आयुर्वेद का अर्थ आयुर्विज्ञान, धनवन्तरिशास्त्र, वैद्यक, वैद्यविद्या है।[4] महर्षि सुश्रुत के अनुसार जिस शास्त्र में आयु सम्बन्धित विषय वर्णित है अथवा जिस शास्त्र के द्वारा दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है उसे आयुर्वेद कहते हैं।[5] चरक ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि जिस ग्रन्थ में हित, अहित, सुख, दु:ख, आयु आदि का वर्णन है, वही आयुर्वेद शास्त्र है।[6] वेदों में आयुर्वेद के सम्बन्धिय तत्त्व प्रचुर मात्रा में मिलता है। जैसे ऋग्वेद[7] में राजयक्षा आदि रोगों के नाश, यजुर्वेद[8] में क्षय, अर्शादि रोग की चिकित्सा, अथर्ववेद[9] में ज्वर (तक्मन) का उपचार प्राप्त होता है। रामायण[10] में लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने के लिये मृतसञ्जीवनी आदि का महत्त्व, अग्निपुराण[11] में विविध रोग की चिकित्सा, मत्स्यपुराण[12] में विषनाशक औषधियाँ आदि आयुर्वेद के ज्ञान से परिपूर्ण है। चरकादि आयुर्वेद शास्त्र में अनेक प्रकार के व्याधियों का सविस्तर वर्णन मिलता है। उनमें से एक है 'रक्तपित्त' नामक व्याधि।

रक्तपित्त व्याधि

बृहत्त हिन्दी शब्द कोशानुसार जिस रोग में मुँह, कान आदि से रक्त निकलता है वह 'रक्तपित्त' व्याधि है।[13] दूषित पित्त का प्रवृद्ध रक्त के साथ शरीर से बाहर निकलना रक्तपित्त कहलाता है। शरीर के ऊर्ध्व, अध: या तिर्यक किसी भी मार्ग से इस रक्तपित्त की प्रवृत्ति हो सकती है।[14] पैत्तिक रक्तस्राव उस रक्तस्राव को कहते हैं जो शरीर के अन्दर उत्पन्न या बाहर से आए किसी तीक्ष्ण-उष्ण गुण द्रव्य के रक्तवाहिनियों पर दुष्प्रभाव से उत्पन्न होता है।[15]

महर्षिभेल ने कहा है कि पित्तविकार, रक्तपित्त, रक्तार्श आदि व्याधियाँ ये सभी रसव्यपत्तिजन्य रोग है।[16] अष्टांगहृदय में कहा गया है कि पित्त रक्त की ही विकृति है, इसलिये जब दोनों एक-दूसरे से मिल जाते हैं, तब रक्त पित्त से शीघ्र दूषित हो जाता है तथा रक्त की गन्ध एवं वर्ण पित्त में आ जाता है।[17] महर्षि चरक के अनुसार अशुद्ध रक्त की यदि शुद्धि न की जाय तो उससे अनेक प्रकार के रक्तदुष्टिजन्य दोष होते है[18] जैसे रक्तजगुल्म, उपकुश, विसर्प, रक्तपित्त इत्यादि[19]। उन्होंने रक्तपित्त के विषय में कहा है कि रक्त और पित्त इन दोनों का संयोग होने से, पित्त द्वारा रक्त को दूषित करने से, रक्त और पित्त इन दोनों की गन्ध और वर्ण में तुल्यता होने के कारण विद्वान लोक पित्त को रक्तपित्त कहते हैं-

संयोगाद् दूषणात्तत्तु सामान्याद्नधवर्णयो:।
रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभि:।।[20]

वह पित्त प्लीहा और यकृत का ही आश्रय करके रहता है एवं देहधारियों के शरीर में रक्तवाही स्रोतों का मूल भी वही प्लीहा और यकृत है। कफजन्य रक्तपित्त में कफ का संबंध रहता है और निकलने वाला रक्त गाढ़ा, पाण्डुवर्ण, चिकना व पिच्छिल होता है। वातिक रक्तपित्त में वायु का सम्बन्ध रहता है और निकलने वाला रक्त श्यामवर्ण या रक्तवर्ण, झागयुक्त, पतला और रूक्ष होता है। पित्तज रक्तपित्त में रक्तपित्त की प्रधानता रहती है और निर्गत होने वाले रक्त का वर्णन कषाय की तरह कान्ति वाला, काला गोमूत्र के समान, मेचक, घर के धूम के समान या अञ्जन के समान होता है। द्वन्दज और सान्निपातिक रक्तपित्त में दो दोषों के मिलने पर दोनों के लक्षण वाला द्वन्द्वज और तीनों दोषों के मिलने से तीनों के लक्षणों वाला सान्निपातिकरक्तपित्त होता है।[21] रक्तपित्त रोग उष्ण, तीक्ष्ण, आहार-विहार तथा खानपानादि कारणों से बढ़ा हुआ पित्त जब अपने स्थान से निकल कर रक्तधातु में प्राप्त होता है तो वह पित्त रक्त से ही उत्पन्न होने के कारण उस रक्त में जाकर अधिक रूप में बढ़ जाता है और उसे दूषित भी कर देता है। उस पित्त की ऊष्मा से मांस आदि धातुओं से वह द्रव धातु निकलता है जिससे रक्तवाहिनयों में रक्त की वृद्धि हो जाती है।[22] इससे रक्त की मात्रा रक्तवाहिनीयों में अधिक होने के कारण रक्त की प्रवृत्ति ऊर्ध्व या अध: या सम्पूर्ण रोमकूपों से होने लगती है-

ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं पवनानुगम्।
कुपितं रोमकुपैश्च समस्तैस्तत् प्रवर्तते।।[23]

कारण

सुश्रुतसंहिता के अनुसार क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विरूद्ध भोजन, धूप, अग्नि, कटु आदि द्रव्यों का नित्यप्रति सेवन करने से दूषित हुआ रक्तपित्त को प्रकुपित करता है।[24] महर्षि भेल ने बताया है कि अत्यन्त खट्टे और नमकीन भोजन करने से, सतत् धूप में रहने से एवं उपवास आदि से ऊर्ध्व तथा अधोमार्ग से रक्तपत्ति प्रवर्त्तित होता है।[25] हारितसंहिता में उल्लिखित है कि अत्यन्त घाम, तीक्ष्ण तथा गरमवस्तु के सेवन, खट्टे पदार्थ और मदिरा के सेवन से रक्तपित्त कुपित होता है।[26] महर्षि वाग्भट ने रक्तपित्त के हेतु में कहा है कि उष्ण, तीक्ष्ण, कटु, अम्ल, लवण और विदाही पदार्थों के अतिसेवन से तथा उन्हीं के साथ कोदो, उदालक इन अन्नों के अतिसेवन से पित्तकारक वस्तुओं से कुपित द्रवपित्त एवं रक्त परस्पर मिलकर समान रूप होकर शरीर में फैल जाते हैं।[27] चरकसंहिता में वर्णित है कि जब मनुष्य यवक (ब्रीहि विशेष), उच्छालक (बनकोदो) और कोरदूष इनमें मिले खान-पान के अतिसेवन से अथवा दूसरे कोई अति उष्ण या तीक्ष्ण गुण वाले अन्न के सेवन करने से अथवा पूए, उड़द, कुलथी, दालें, क्षारयुक्त पदार्थों के सेवन, दही, दधिमण्ड (मस्तु), उदश्वित् (आधा जल मिश्रित तक्र), कट्व (बिना पानी का तक्र या खट्टी छाछ), अम्लकांजी (खट्टी कांजी), सूअर, भैंस, भेड़, मछली और गाय के मांस के सेवन, पिण्याक (फेणी), पिण्डालु, कचालु, शुष्क शाक (सूखे शाक) से युक्त अन्न पान के सेवन, मूली, सरसों, लशुन, करञ्ज, सहजन, मधुशिग्रु (मीठा सहजन), खडयूष (कढी आदि), भूस्तृण (रोहिष तृण), समुख, सुरस, कुठेर, गण्डीर, कालमानक, पर्णास, क्षवक और फनिज्जक (तुलसी आदि के भेद) इनके सेवन, सुरा, सौवीर (कांजी), तुषोदक, भैरेय, मेदक, मधूलक (महुवे की शराव), शुक्त (सिरका आदि) कुवल (बड़ा बेर), बेर अथवा दूसरे खट्टे पदार्थ मिश्रित वस्तुओं के अत्यन्त उपयोग करने से, अधिक उष्णिमा में रहने के पीछे अथवा पिट्टी युक्त अन्न के खाने के उपरान्त बार-बार पानी के पीने से अथवा दूध के साथ रोहितक शाक या कबूतर का मांस,सरसों के तेल अथवा क्षार में सिद्ध किये हुए पदार्थों के भोजन से अथवा कुलथी, उड़द, पिण्याक, जामुन आदि पके हुए फलों के साथ कांजी या कच्चा दूध अतिमात्रा में अथवा शरीर की गरम स्थिति में खाने से मनुष्य का पित्त प्रकुपित हो जाता है और रक्त अपनी मात्रा से अधिक बढ़ जाता है। पित्त प्रकोप से रक्त का दोष इस प्रकार प्रमाण में अधिक बढ़ा हुआ रक्त तथा प्रकुपित हुआ पित सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है और यकृत् एवं प्लीहा से उत्पन्न होने वाले रक्त वह स्रोतों के बढ़े हुए रक्त के कारण भरे हुए मुखों को पहुँचकर बन्द कर देता है। इस प्रकार संसर्ग द्वारा पित्त रक्त को दूषित कर देता है।[28]

पूर्वरूप

रक्तपित्त के पूर्वरूप के विषय में सुश्रुत ने कहा है कि अंगों में शिथिलता, शीत की चाह, कण्ठ में धूमोद्वमन की भाँति वेदना, वमन, नि:श्वास में रक्त की गन्ध होता है।[29] महर्षि भेल ने कहा रोगी के कण्ठ में जलन तथा पीड़ा होती है और उसका तालु सुखता है। उसके मुख से लोहे जैसी गन्ध आती है, कण्ठ में धुवाँसा उठता प्रतीत होता है।[30]

वाग्भट ने बताया है कि शिर में भारीपन, अरूचि, शीत की चाह, धुवांस, अम्ल उद्गार आदि होते है।[31] गरूड़महापुराण के अनुसार यह रक्तपित्त रोग पैदा होने के पहले वमन, वैमत्स्य, कास, श्वास, भ्रान्ति, क्लान्ति, शरीर की रक्तवर्णता, मुख से मछली की गन्ध तथा रक्तवर्णता, ज्वर भाव आदि लक्षण दिखलाई पड़ता है।[32] चरक के अनुसार ये रक्तपित्त के पूर्वरूप होते है, जैसे- भोजन की इच्छा न होना, भोजन के बाद गले में दाह पड़ना एवं पाकावस्था में खट्टी शुक्त की तरह गन्ध एवं रस वाला डकार, वमन का वेग पुन: पुन: आना, वमन का घृणित होना, स्वरभेद, अंगों में शिथिलता, दाह, मूख से धूम की तरह वाष्प निकलना और मुख से लोह, रक्त, मछली और आम की गन्ध की तरह गन्ध निकलना, शरीर के विभिन्न अङ्ग, मल, मूत्र, स्वेद, लार, नाक एवं कान, मुख और नेत्र का मल, पिडकाओं रक्त, हरा और पीला हो जाना, अंगों में वेदना, बार-बार स्वप्न में लाल, नीला, पीला, काला वर्ण के तेजस्वी प्रकाश वाले वस्तु को देखना ये सब रक्तपित्त रोग के पूर्वरूप हैं।[33]

उपसर्ग (उपद्रव)

सुश्रुतसंहिता में वर्णित है कि दुर्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमन, मद, तन्द्रा, दाह और मूर्च्छा आदि ये सब रक्तपित्त के उपसर्ग हैं।[34] हारीतसंहिता के अनुसार इस रोग से क्षीण, शरीर में क्रान्ति, हीन और दुर्बलभाव, मन्दाग्नि आदि विविध व्याधि दिखाई देती हैं।[35] भावप्रकाशकार भावमिश्र का कहना है कि पिपासा, बार-बार दस्त का लगना, शिर में सन्ताप, थूक का दुर्गन्ध युक्त होना, भोजन में अरूचि आदि रक्तपित्त के १९ (उन्नीस) उपद्रव होते हैं।[36] गरूड़महापुराण के अनुसार इस रक्तपित्त में विकाररूपी अनेक उपद्रव होते हैं।[37] चरकसंहिता में उल्लेख है कि बल की कमी, भोजन में अरूचि, खाये हुए अन्न का ठीक न पचना, श्वास,कास, ज्वर अतिसार, शोध, शोष, पाण्डुरोग एवं स्वरभेद हैं-

उपद्रवास्तु खलु दौर्बल्पारोच काविपाक श्वासका-
सज्वरातीसारशोफशोषपाण्डुरोगा: स्वरभेदश्च।।[38]

साध्यासाध्यता

सुश्रुत ने कहा जिस रक्तपित्त में रक्त मांस के धोवन के समान या मांस उबाले पानी के समान हो, कीचड़ घुले पानी के समान जिसका रंग हो इत्यादि हेतु वह असाध्य है।[39]

महर्षि भेल ने कहा है कि ऊर्ध्व भाग का रक्तपित्त साध्य होता है, अधोभाग का रक्तपित्त याप्य होता है, किन्तु जो रक्तपित्त शरीर के सभी मार्गों से बाहर निकलता है, वह असाध्य होता है।[40] भावप्रकाशकार ने कहा है कि एक दोष से उत्पन्न रक्तपित्त साध्य दो दोषों से उत्पन्न हुआ याप्य तथा जो तीनों दोषों से उत्पन्न होता है, और जो मन्दाग्नि वाले रोगी को अत्यन्त वेगवान होता है वह असाध्य होता है।[41] महर्षि चरक का कहना है कि दोनों मार्गों में जो रक्तपित्त ऊपर के मार्ग से निकलता है वह साध्य है, क्योंकि बढ़े हुए पित्तको निकालने के लिये विरेचन अच्छी औषधि है और ऊर्ध्वग रक्तपित्त की बहुत सी औषधियाँ है। जो अधोभाग से निकलता है वह रक्तपित्त याप्य है। क्योंकि वह वमनसाध्य है और इसकी औषधियाँ बहुत ही कम हैं। जो उभयभाग से रक्त जाता है वह रक्तपित्त असाध्य है। क्योंकि दोनों मार्ग से रक्तपित्त जाने पर वमन और विरेचन दिया नहीं जा सकता और ऐसा कोई औषधि नहीं है जो दोनों मार्गों को ठीक कर सके।[42] अत: जो ऊर्धभाग से निकलता है वह रक्तपित्त साध्य होता है। क्योंकि उसमें विरेचन दिया जाता है और उसकी औषध बहुत सी है। विरेचन पित्त को विजय करने के लिए उत्तम औषधि है और उसमें जो कफ का सम्बन्ध होता है उसके लिए भी विरेचन मध्यम है, उर्ध्वग रक्तपित्त में मधुर औषधि उपयोगी होती है, इसलिए उर्ध्वग रक्तपित्त साध्य होता है। इत्यादि।[43]

चिकित्सा

वेदों में अनेक मन्त्र मिलते है, जिनमें विविध रोगों के चिकित्सा को बतलाया गया है, जैसे ऋग्वेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि **'अन्तर्विश्वानि भेषजा'** अर्थात जल में सभी रोगों की सारी औषधियाँ विद्यमान है।[44] यजुर्वेद में शल्मलि (सेमर) महौषधि का उल्लेख है।[45] भावप्रकाश ग्रन्थ में इसे कफ, वात, रूधिर विकार, रक्तविकार जनित आदि व्याधि का नाशक बताया गया है।[46] अथर्ववेद में उदुम्बर (गूलर) का उल्लेख है[47], भावप्रकाश में इसे रक्तप्रदर, रक्तपित्त, रक्तवमनादि रक्त्विकार का नाशक बताया है[48]। महर्षि भेलाचार्य का कहना है कि शरीर में जब कोई व्याधि के लक्षण प्रकट होते हैं तब तुरन्त ही उसके चिकित्सा की प्रक्रिया करनी चाहिए।[49] अत: रक्तपित्त का उपचार में महर्षि हारीत ने अपना मत प्रकाश करते हुए कहा है कि वांसाका काढ़ा, कमलकी जडकी मांटी, गोंदी, लोध, रसांजन, कमलकेशर इनमें मधु और मिसरी मिलाकर पीने से रक्तपित्त शान्त हो जाता है।[50] काश्यपसंहिता के अनुसार पित्तविकारजनित व्याधि रक्तपित्त आदि की शान्ति के लिये कषाय, तिक्त, मधुर, द्रव्य, स्नेह आदि का उपयोग करे।[51] वाग्भट अष्टांग में कहा है कि अडूसे के स्वरस के साथ प्रियङ्गु, मृत् (तालाब की मिट्टी), रसांजन और मधु को पीने से रक्तपित्त शान्त होता है।[52] भावप्रकाश में कहा गया है कि अरूस, मुनक्का तथा हर्रा- इनके क्वाथ में मिश्री तथा शहद मिलाकर पीने से यह रोग दूर हो जाते हैं।[53] अग्निपुराण में उल्लिखित है कि रक्तपित्त का रोगी को अडूसे के स्वरस में मधु एवं मिश्री मिलाकर पीना चाहिए।[54] आयुर्वेदीय ग्रन्थ भेषज्यरत्नावली के अनुसार नेवारी की जड़ का क्वाथ मधु तथा खण्ड मिलाकर पीने से अथवा अत सी के फूल, लज्जावन्ती, वट की

दाढ़ी तथा छाल का काढ़ा पीने से रक्तपित्त शान्त हो जाता है।[55] इनको पीसकर शहद से सेवन करे।[56] द्रव्यगुण विज्ञान ग्रन्थ में कहा गया कि कुष्माण्ड नामक औद्भिदद्रव्य मधुर, स्निग्ध और शीत होने से रक्तपित्तशामक है।[57] गुडूची (गिलोय) सभी रक्तरोगों का संहाकर है।[58] सौंफ एवं सरका रामबाण (पटेर या मोथीतृण)[60] रक्तपित्त शामक रूप में उपयोगी है। योगग्रन्थ हठप्रदीपिका[61] एवं घेरण्डसंहिता[62] में बतलाया गया हैं कि पद्मासन के द्वारा सभी रोगों का शमन होता है।

चरकसंहिता के अनुसार सावधानीपूर्वक वैद्य को उचित है कि शीघ्र ही नाशक दावाग्नि की तरह यदि रक्तपित्त रोग आपतित हो जाए तो अत्यधिक इस रोग की शान्ति का प्रयत्न मात्रा, देश, काल का विचार कर संतर्पण के द्वारा या अपतर्पण के द्वारा तथा मृदु, मधुर, शीत, तिक्त और कषाय प्रधान भोजन के द्वारा और बाहरी शरीर पर लेप, परिषेक, अवगाह, स्पर्श और वमन द्वारा शीघ्र ही करना चाहिए।[63] जिस रक्तपित्त के रोगी का बल और मांस क्षीण न हो, उचित रूप से भोजन करता हो, ऐसे रक्तपित्त के रोगियों के दोषों से दुष्ट एवं उभड़े हुए रक्त को चिकित्सा के प्रारम्भ में रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिये।[64] इस रोग में रक्त के मार्ग दोषों का सम्बन्ध, रक्तपित्त के कारणों का विचार कर प्रारम्भ में लङ्घन या तर्पण का प्रयोग करना चाहिये। रक्तपित्त रोगी को प्यास लगने पर सुगन्ध वाला लालचन्दन, खश, नागर मोथा और पित्त-पापड़ा का षडङ्गपानीय विधि से पकाए जल को गरम कर शीतल कर पीने के लिए देना चाहिये।[65] खजूर मुनक्का, महुआ का फूल और फालसा का शृतशीत जल में चीनी मिलाकर तर्पण के लिए पीने को देना चाहिये। धान के लावा के चूर्ण में प्रभूत मात्रा में गोघृत और मधु मिलाकर तर्पण का प्रयोग करे। इसके पान करने के ऊर्ध्वग रक्तपित्त अनुकूल काल पर नष्ट हो जाता है। मन्दाग्नि वाले रक्तपित्त के रोगियों को, जिन्हें अम्लरस सात्म्य है, उन्हें बताये हुए तर्पण को खट्टा करके दे। उक्ततर्पण को खट्टा करने के लिए अनार और ऑवला का रस प्रयोग करें।[66] रक्तपित्त के रोगियों को आहार के लिए शालि धान का चावल, साठी का चावल, नीवार, कोरदूष (कोदो का चावल) आदि से बनाए हुए अनेक प्रकार के भोजन दे। मूंग, मसुर, चना, मकुष्ठ, आढकी फल (रहर)- इनकी दाल या यूष की कल्पना करके देनी चाहिये। परोरा, नीम की पत्ती, बेत के अग्रभाग, पकड़ी की अग्रपत्ती (टूसा), बेत की पत्ती, चिरयता, गण्डेर की पत्ती, करेला, कचनार का फूल, गम्भार की पत्ती आदि रक्तपित्त रोगनाशक है।[67] पारावत, कबूतर, लवा, रक्ताक्ष (चकोर) बटेर, खरहा,कपिञ्जल, एण, हरिण, कालपुच्छ- इन के मांसरस का प्रयोग रक्तपित्त में हितकर होता है। लाल और नील कमल का केशर, पिठिवन, प्रियङ्गु-इन द्रव्यों से षडङ्गपानीय परिभाषा के अनुसार पकाये हुए जल में पकायी हुई पेया रक्तपित्तशक होती है। षडङ्गपरिभाषा के अनुसार लाल चन्दन, खस, पटानी लोध और सोंठ से पकाये हुए जल योगतरंगिणी के अनुसार पके गूलट, कंभारी, हरड़ खजुर और दाख में बनायी गयी पेया, चिरायता, शख, नागरमोथा से पकाये हुए जल में बनायी हुई पेया,ध्रव का फूल, जवासा, सुगन्धबाला और बेल की गुद्दी के जल से बनाई गयी यवागू इत्यादि रक्तचित्त में हितकर है।[68] इसके सिवाय उशीरादि चूर्ण[69], किराततिक्तादि चूर्ण[70], उशीरादि पेया[71], प्रियङ्ग्वादि पेया[72], द्राक्षादि योग[73], शतावरीक्षीर[74], वासाघृत[75] और शतावर्यादि घृत[76], इत्यादि उपयोग से रक्तपित्त रोग दूर होता है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि आयुर्वेदिय ग्रन्थ चरकसंहिता में रक्तपित्त रोग को आयुर्वेदीय चिकित्सा के माध्यम से पूर्णता ठीक किया जा सकता है, जिसके कोई भी दुष्परिणाम नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० श्याम बहादुर वर्मा, बृहत् हिन्दी शब्दकोश (खण्ड-1), पृ० 311
2. गोविन्द चातक, बृहत् हिन्दी पर्यायवाची शब्दकोश, पृ० 24
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० 975
4. हिन्दी पर्यायवाची कोश, पृ० 67
5. आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः।
   सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान 1/13
6. चरकसंहिता, सूत्रस्थान 1/41
7. ऋग्वेद 10/161/1-5
8. शुक्लयजुर्वेद 12/97
9. अथर्ववेद 5/22/1-14
10. रामायण, युद्धकाण्ड 74/33
11. अग्निपुराण, अध्याय-279 (सिद्धौषधकथन)
12. मत्स्यपुराण (भाग-2) 96/20
13. बृहत् हिन्दी शब्दकोश (खण्ड-2), पृ० 2066
14. डॉ० दीप्ति पाराशर, रोगनिदान एवं विकृति विज्ञान, पृ० 100
15. श्री धर्मदत्त वैद्य, त्रिदोष-संग्रह, पृ० 12
16. पित्तं लोहितपित्तं च रक्ताशांसि प्रलेपकम्।
   भेलसंहिता, सूत्रस्थान 11/7
17. पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद् दूषणादिप।
   अष्टांगहृदय, निदानस्थान 3/3
18. ततः शोणितजा रोगाः प्रजायन्ते पृथग्विधाः।
   चरकसंहिता, सूत्रस्थान 24/11
19. वही, सूत्रस्थान 24/12
20. वही, चिकित्सास्थान 4/9
21. वही, चिकित्सास्थान 4/10-12
22. वही, चिकित्सास्थान 4/7-8
23. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), विमर्श, पृ० 180
24. क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान्।
   कट्वम्ललवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः।।
   नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं प्रकोपयेत्।
   सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 45/3-4

25. अत्यम्ललवणहारात् सततातपसेवनानात्।
भेलसंहिता, चिकित्सास्थान 3/2
26. हारीतसंहिता, तृतीयस्थान 10/1, पृ० 281
27. अष्टांगहृदय, निदानस्थान 3/1-2
28. चरकसंहिता, निदानस्थान 2/4
29. सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायानं वमिः।
लोहगन्धिश्च निःश्वासी भवत्यस्मिन् भविष्यति।
सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 45/7-8
30. सन्दह्यते दूयते च कण्ठस्तालु च शुष्यति।
लोहगन्धि मुखं चास्य कण्ठो धूमायते तथा।
भेलसंहिता, चिकित्सास्थान 3/6-7
31. शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः।
अष्टांगहृदय, निदानस्थान 3/4
लोहितो न हितो मत्स्यगन्धास्यत्वञ्च विज्वरे।
गरुड़महापुराण, पूर्वखण्ड 148/5-6
32. छर्दितश्छर्दिर्बभत्स्यं कासः श्वासो भ्रमः क्लमः।
लोहितो न हितो मत्स्यगन्धास्यत्वञ्च विज्वरे।
गरुड़महापुराण, पूर्वखण्ड 148/5-6
33. चरकसंहिता, निदानसथान 2/6
34. दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदास्तन्द्रितादाहमूर्च्छा।
सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 25/9
35. रोगक्षीणे छविरविकले हीनदौर्बल्यकाये मन्दाग्निर्वा।
हारीतसंहिता, तृतीयस्थान 10/16, पृ० 283
36. तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूयनिष्ठीवनञ्च द्वेषो भक्तेऽविपाको। भावप्रकाश (द्वितीय भाग), मध्यम खण्ड, रक्तपित्ताधिकार, श्लोक सं०-8, पृ० 115
37. उपद्रवाश्च विकृतिं फलतस्तेषु साधितम्। गरुड़महापुराण,
पूर्वखण्ड 148/6
38. चरकसंहिता, निदानस्थान 2/7
39. सुश्रुतसंहिता, उत्तर यन्त्र 45/10
40. भेलसंहिता, चिकित्सास्थान 3/8
41. एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते।
सत्रिदोषमसाध्यं स्यान्मद्वाग्नेरतिवेगवत्।। भाव प्रकाश (द्वितीय भाग), मध्यम खण्ड, रक्तपित्ताधिकार, श्लोक सं० 9, पृ० 115
42. चरकसंहिता, निदान स्थान 2/9
43. वही, निदान स्थान 2/12-14
44. ऋग्वेद 10/9/6
45. शल्मलिर्वृद्ध्या। यजुर्वेद 23/13
46. भावप्रकाश (प्रथम भाग), वटादिवर्ग, श्लोक सं० 58-59, पृ० 696-697
47. महान् भद्र उदुम्बरः। अथर्ववेद 20/136/15
48. भाव प्रकाश (प्रथम भाग), वटादिवर्ग, श्लोक सं० 8-9, पृ० 675
49. न च व्याधिमुपेक्षेत शरीरं पतितं बुधः।
त्वरेत शमने तस्य। भेलसंहिता, सूत्रस्थान 4/27
50. हारीतसंहिता, तृतीय स्थान 10/23
51. कषायतिक्तमधुरस्नेह। काश्यपसंहिता, सूत्रस्थान 27/40
52. अष्टांगहृदय, चिकित्सास्थान 2/25
53. भावप्रकाश (द्वितीय भाग), मध्यमखण्ड, रक्तपित्ताधिकार, श्लोक सं० 31, पृ० 118
54. रक्तपित्ती पिबेद्वासास्वरसं ससितं मधु। अग्निपुराण 283/20
55. भैषज्यरत्नावली, रक्तपित्ताधिकार, श्लोक सं० 24, पृ० 235
56. योगतरंगिणी (भाग-1) 23/7, पृ० 249
57. आचार्य प्रियव्रत शर्मा, द्रव्यगुण-विज्ञान, पृ० 13
58. निघण्टु-आदर्श (पूर्वार्ध), गुडुच्यादि वर्ग, पृ० 36
59. श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा, वनौषधि-शतक, पृ० 207
60. डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह, वनौषधि-विमर्श, पृ० 17
61. पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम्। हठप्रदीपिका 1/47
62. एतद्व्याधि विनाश कारण परं पद्मासनं प्रोच्यते। घेरण्डसंहिता 2/8
63. चरकसंहिता, निदानस्थान 2/11
64. वही, चिकित्सास्थान 4/25
65. वही, चिकित्सास्थान 4/30-31
66. वही, चिकित्सास्थान 4/33-35
67. वही, चिकित्सास्थान 4/36-39
68. वही, चिकित्सास्थान 4/41-46
69. वही, चिकित्सास्थान 4/73
70. वही, चिकित्सास्थान 4/74-76
71. वही, चिकित्सास्थान 4/80
72. वही, चिकित्सास्थान 4/81
73. वही, चिकित्सास्थान 4/84
74. वही, चिकित्सास्थान 4/85
75. वही, चिकित्सास्थान 4/88
76. वही, चिकित्सास्थान 4/95-96